क्रिस्टोफर विंच
इंग्लैण्ड के समकालीन शिक्षा दार्शनिक, संप्रति किंग्स कॉलेज, लंदन के डिपार्टमेंट ऑफ एज्युकेशन एण्ड प्रोफेशनल स्टडीज के विभागाध्यक्ष एवं एज्युकेशनल फिलॉसोफी एण्ड पॉलिसी के प्रोफेसर।

शैक्षिक गुणवत्ता की तलाश

निवेशों और उत्पादों का द्वंद्व

यह लेख शिक्षा की गुणवत्ता को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखने के प्रचलित तरीके पर विचार करता है, जिसके अन्तर्गत 'निवेश' ग्रहण किए जाते हैं और 'उत्पाद' की आपूर्ति की जाती है। 'निवेश' यानी संसाधनों के रूप में कुछ शिक्षा व्यवस्था में डाला जाना और 'उत्पाद' यानी ज्ञान, कौशल, समझ, दृष्टिकोण एवं सद्गुण के अर्थ में उस व्यवस्था से कुछ हासिल हो पाना। लेख का तर्क है कि यह नजरिया बहुत कुछ सहायक नहीं है और उन मुख्य मुद्दों को धुंधलाता है जिनसे संबोधित होना शिक्षा में गुणवत्ता के किसी भी आंकलन के लिए आवश्यक है।

यूरोप के अधिकतर देशों में मौजूदा सोच यह जान पड़ती है कि शैक्षिक गुणवत्ता का आंकलन करने में केवल शैक्षिक उत्पादों (outputs) को ही महत्त्व देना आवश्यक है। निवेशों (inputs) की भूमिका के प्रति उदासीनता झलकती है। इस प्रकार की सोच के पीछे 'सीखने के परिणामों' से जुड़ा दर्शन है। इस दर्शन ने शिक्षा के एक यूरोपीय आयाम को निर्मित करने की कोशिशों को गहरे तौर पर प्रभावित किया है। इस पहलकदमी का उद्देश्य है कि योग्य कर्मियों तथा व्यावसायिक शिक्षा से जुड़ी योग्यताओं के एक यूरोपीय बाजार का निर्माण हो पाए। मकसद है कि यूरोपीय यूनियन के सभी देशों के श्रम-बाजार में श्रम-शक्ति की गुणवत्ता की पारदर्शी जानकारियां रहें। यह उद्यम शायद यूरोपीय यूनियन में शैक्षिक व्यवस्था के लिए बाजार-रचना की कोशिशों का चरम बिन्दु है। श्रम-बाजार या किसी शैक्षिक संस्था में आदान-प्रदान के लिए आवश्यक बाजार संबंधी जानकारी प्रमाणीकरण (सर्टिफिकेशन) में सम्मिलित होगी और आशा की जा रही है कि प्रमाणीकरण से गुणवत्ता की गारंटी मिलेगी। माना जा सकता है कि इस प्रकार के संदर्भ भारत की स्थितियों से कोसों दूर होंगे लेकिन जरूरी नहीं है कि ऐसा ही हो। आगे की चर्चा से स्पष्ट हो जाएगा कि यूरोप में चल रहे इन बहस-मुबाहिसों की पृष्ठभूमि में सामाजिक असमानता तथा शैक्षिक उपलब्धि से उसके संबंध का प्रश्न है। इसलिए यूरोप में चल रही गुणवत्ता संबंधी यह बहस भारत के संदर्भ में भी प्रासंगिक हो जाती है। यह भी ध्यान देने की बात है कि गुणवत्ता-मूल्यांकन के जिन विश्लेषणात्मक उपकरणों पर यूरोप में व्यापक तौर पर प्रयोग किए जा चुके हैं, उन पर नीति-निर्माताओं का विचार जारी है। इस संदर्भ में यह प्रश्न व्यापक प्रासंगिकता लिए हुए है कि क्या गुणवत्ता को- और विद्यालय में बढ़ोतरी को- सुनिश्चित करने से संबद्ध प्रौद्योगिकी द्वारा मूलतः सामाजिक और राजनैतिक चुनौतियों पर पर्दा डालने के अतिरिक्त कुछ और भी किया जाता है ?

इस प्रयास का आधार यह विचार है कि शिक्षा के कुछ विशेष परिणाम होते हैं जिन्हें मापा भी जा सकता है और उन्हीं से उसके मुख्य लाभ भी हैं। भाषा प्रयोग में तो भिन्नता हो सकती है लेकिन आमतौर पर इन्हें 'ज्ञान', 'दक्षताएं', 'समझ' तथा 'योग्यताएं' कह दिया जाता है। इनमें से प्रथम दो तो शायद स्पष्ट ही हैं, लेकिन 'समझ' के अंतर्गत एक व्यक्ति का दृष्टिकोण या नजरिया आ जाता है जब कि 'योग्यताएं' अक्सर सामाजिक दक्षताओं, मनोवृत्तियों तथा सद्गुणों की ओर इशारा करती हैं। इंग्लैण्ड में विकसित किए गए नेशनल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क तथा यूरोपीय यूनियन के देशों के लिए विकसित किए गए यूरोपीय क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क के मूल में इसी प्रकार की सोच है। शिक्षा को केवल उत्पाद के नजरिए से देखे जाने को फायदेमंद माना जाता है। इस सोच के मुताबिक शिक्षा का इस्तेमाल करने वालों के लिए केवल इतना जानना आवश्यक है कि शिक्षार्थी की सामर्थ्य क्या है- वैसे ही, जैसे मुझे यह जानना जरूरी नहीं है कि मेरी कार बनी कैसे है, मुझे तो बस कार की सामर्थ्य के बारे में ही जानकारी होना आवश्यक है। लेकिन यह मानकर चलना कि निवेश (उद्देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र, रचनात्मक आंकलन- Formative Assessment), को उत्पाद (परिणामों के योगात्मक आंकलन - Summative Assessment) से अलग किया जा सकता है, बहुत ही संदेहास्पद बात है और इस पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा होता है (यानी यह उचित नहीं लगता कि जो कुछ भी शिक्षा के लिए लगाया गया, उसे उत्पादित परिणाम से अलग करके देखा जाए)।

हां, यह जरूर प्रतीत होता है कि उत्पाद-आधारित यह प्रारूप कुछ लुभावने नव-परिवर्तनों को आसान बनाता है- जैसे कि मॉडयूल निर्माण, क्रेडिट हस्तांतरण अर्थात् निर्धारित मानदण्ड प्राप्त कर लेने पर पूर्व-प्रमाणित ज्ञान की अधिकृत मान्यता (Accreditation of Prior Certificated Learning - APCL) तथा निर्धारित मानदण्ड प्राप्त कर लेने पर पूर्व-अनुभव-आधारित ज्ञान की अधिकृत मान्यता (Accreditation of Prior Experiential Learning - APEL)- यानी शिक्षा का एक लचीला प्रारूप जिसे अपनाया और बीच में छोड़ा भी जा सकता है तथा जिसमें जीवन के कुछ शिक्षाप्रद अनुभवों को भी लिया जा सकता है। इस बात पर अंगुली रख पाना कि चीजों को इस नजरिए से देखने में गलत क्या है, एक प्रकार की चुनौती ही है। क्योंकि इसमें कोई शक नहीं है कि शिक्षा हमें वयस्क जीवन के लिए तैयार करती है और इसीलिए यह निश्चित तौर पर महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि शिक्षार्थी किन गुणों और विशेषताओं के साथ उभरकर आता है। लेकिन फिर भी मैं दिखाने की कोशिश करूंगा कि इस प्रारूप में गलत क्या है। यह दिखाने की भी कोशिश रहेगी कि क्यों हमें शैक्षिक निवेशों पर ध्यान देते रहना चाहिए- बल्कि उन आधारभूत श्रेणियों और उनके अंतःसंबंध पर भी, जिनके संदर्भ में ही हम शिक्षा के बारे में सोचते हैं (उद्देश्य, स्तर, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र तथा आंकलन)। 'निवेश' और 'परिणाम' की भाषा का प्रयोग करते हुए मैं यह नहीं सुझाना चाहता कि वे किसी भी महत्त्वपूर्ण अर्थ में एक-दूसरे से अलग किए जा सकते हैं।[1]

परिणाम या उत्पाद आधारित प्रारूप के साथ एक स्पष्ट समस्या तो यही है कि हमारी दिलचस्पी 'निवेशों' (यानी पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र या शिक्षण पद्धति तथा रचनात्मक आंकलन के तौर-तरीकों) में होती ही है। निवेशों में किसी भी नजरिए से कमी रह जाती है तो उत्पादों के महत्त्व और मूल्य पर भरोसा बना पाना मुश्किल हो जाता है। 'गुणवत्ता का आश्वासन' एक हल है, जिसके अंतर्गत यह सुनिश्चित किया जाता है कि उत्पाद या परिणाम एक भरोसेमंद प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करते हों। इंग्लैण्ड ने एक खास ढंग से परिणाम या उत्पाद-आधारित रास्ता अपनाया है- परिणामों के लिए स्तर निर्धारित किए गए हैं, सार्वजनिक परीक्षण द्वारा उन्हें आंका गया है तथा अध्यापकों के मूल्यांकन भी काफी हद तक प्रकाशित किए गए हैं। निरीक्षण के माध्यम से स्कूलों के भीतर चल रही प्रक्रियाओं को आंकने के प्रयास किए गए हैं। जानकारियां तथा आंकड़े एकत्र करने और उनकी तुलना के जरिए स्कूलों और महाविद्यालयों के भीतर चल रही प्रक्रियाओं की एक बड़ी तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास रहा है। इसका नवीनतम उदाहरण है संदर्भित मूल्य के जोड़ की कार्यप्रणाली (Contextual Value Added Methodology)- इसके तहत, प्रत्येक शिक्षार्थी के संदर्भ में, मापने लायक शैक्षिक उपज को परिमाणित करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही, यह कोशिश भी रहती है कि हासिल की गई उपलब्धि पर सामाजिक वर्ग, प्रजाति और लिंग जैसे कारकों के प्रभाव का अंदाजा लगाया जा सके।[2] दूसरे शब्दों में, केवल स्कूल से निकलते समय ही प्रत्येक बच्चे के काम-काज की समीक्षा के बजाय स्कूल में उसके द्वारा किए गए विकास का भी आंकलन होगा और शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों (जैसे शिक्षार्थी का लिंग, उससे पहले की उसकी उपलब्धियां, सामाजिक वर्ग, उसकी मातृभाषा तथा परिवार में स्थान) को भी ध्यान में रखा जाएगा- बावजूद इसके कि इनके प्रति स्कूल की कोई जिम्मेदारी नहीं है। उत्पाद संबंधी ये कदम स्कूल द्वारा स्वयं अपनी कारगुजारी के आंकलन का तो अभिन्न अंग होंगे ही, निरीक्षणालय द्वारा आंकलन का भी हिस्सा होंगे। 1992 में शिक्षा में मापदंड बनाए रखने से संबंधित कार्यालय (Office for Standards in Education OFSTED) के गठन के बाद से इंग्लैण्ड में निरीक्षण का इतिहास ज्ञानप्रद है। शुरुआत में एक ऐसी कार्यप्रणाली

का प्रयोग किया गया जो काफी हद तक निवेश से जुड़ी बातों (जैसे शिक्षण, सीखना तथा मूल्यांकन) की जांच-परख पर आधारित थी, यद्यपि तरीका अनगढ़-सा ही था। लेकिन धीरे-धीरे इसमें बदलाव आया है और अब उत्पाद संबंधी संदर्भित आंकड़ों को निवेश से जुड़े कारकों के आंकलन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि के तौर पर प्रयोग में लाया जाता है। उत्पाद-आधारित कार्रवाई में समस्याएं चाहे कुछ भी हों, निवेश-आधारित कार्रवाई (जैसे कि निरीक्षण) में भी समस्या है। असली बात तो शायद यह है कि इनमें से किसी एक पर निर्भर रहने के बजाय किस प्रकार दोनों में संतुलन बनाया जाए।

शैक्षिक अवधारणाओं के बीच कुछ तार्किक संबंध

गुणवत्ता से जुड़े इन मुद्दों की एक स्पष्ट तस्वीर उभरे, इसके लिए बेहतर होगा कि विभिन्न केन्द्रीय शैक्षिक अवधारणाओं के आपसी संबंधों को जांचा जाए। सर्वप्रथम, शैक्षिक उद्देश्य के विचार से प्रारंभ करते हैं। उन्हें स्पष्ट, खुले-तौर पर अभिव्यक्त न किया गया हो, तो भी शिक्षा के उद्देश्य तो होते ही हैं। इस बात के कई कारण हो सकते हैं क्योंकि : -

1. ये उद्देश्य समाज में एक आम राय को प्रतिबिंबित करते हों।
2. इस डर से कि ऐसी चर्चा से कहीं तनाव और टकराहट न पैदा हो जाए, इन उद्देश्यों को खुले तौर पर चर्चा में न लाया जाए।
3. बहुत ही खुले ढंग से अभिव्यक्त किए जाने पर उन्हें शर्मनाक समझा जाए।

मसलन, आमतौर पर कोई भी यह स्वीकार नहीं करना चाहेगा कि वह बच्चों को घमंड और आत्म-विश्वास से भरे नस्लवादी तथा दंभी इंसान बनने की शिक्षा दे रहा है ताकि वे अपने से 'कमतर नस्लों' पर साम्राज्य चला सकें- यदि किसी ने अपने स्कूलों में या कम से कम उनमें से कुछ में, बिलकुल ऐसा ही करने का उद्देश्य रखा हो तो भी वह इस बात को स्वीकर करने को तो तैयार नहीं ही होगा। अपने व्यापकतम अर्थ में शिक्षा इंसान को जीवन के लिए तैयार करती है; जीवन में इंसान को जिन गुणों की जरूरत पड़ती है, उन्हें हासिल करने में शिक्षा उसकी मदद करती है। और इसलिए शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण गतिविधि है। इस अर्थ में शिक्षा कई प्रकार की गतिविधियों को अपने दायरे में लेती है और अंग्रेजी भाषा में इन सभी को आमतौर पर शिक्षा की अवधारणा के अन्तर्गत ले लिया जाता है। इस प्रकार अंग्रेजी में 'अप्ब्रिंगिंग/upbringing' या 'चाइल्ड रियरिंग/child rearing' हैं जिनके लिए जर्मन में शब्द है 'Erziehung', जो शिक्षा के अन्तर्गत चरित्र-विकास के पक्ष को स्वयं में शामिल करता है। 'स्कूलिंग' में अमूमन स्कूल से ही संबंधित गतिविधियां शामिल होती हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि इनमें केवल परंपरागत अकादमिक पाठ्यचर्या ही होगी। जर्मन भाषा में व्यवसाय के हिस्से के तौर पर काम के लिए होने वाली तैयारी हेतु भी एक शब्द है-'Ausbildung', जिसका अंग्रेजी में अनुवाद 'वोकेश्नल एज्युकेशन' (न कि 'ट्रेनिंग') के रूप में किया जा सकता है। फिर, कुछ भाषाओं में (और एक बार फिर, जर्मन भाषा इसका भी एक समृद्ध उदाहरण है) एक शिक्षित व्यक्ति के अधिक व्यापक विचार की ओर इशारा करने के लिए एक विशेष शब्द प्रयोग में लाया जाता है। यह विचार अंग्रेजी के शब्द 'लिबरल एज्युकेशन' के अर्थ को ही संबोधित नहीं करता बल्कि आत्म-खोज और आत्म-ज्ञान जैसे गुणों से भी संबंध रखता है, जिन्हें स्कूलिंग के भी बाद ही पूर्ण रूप से पाया जा सकता है- बल्कि यह काम तो शायद अधूरा ही रह जाता है। 'Bildung' की यह अवधारणा अंग्रेजी में 'जीवनपर्यन्त सीखना/lifelong learning' की बात से कहीं आगे की बात है- क्योंकि इसका अधिक संबंध तो व्यक्ति से, उसकी वैयक्तिकता से है, सार्थकता से भरा जीवन जीने से है, केवल उस ज्ञान और दक्षता को हासिल करने से नहीं है जिसे बड़ी आसानी से उत्पाद-आधारित कदमों के माध्यम से हासिल किया जा सकता है। इसलिए, यदि हम शिक्षा की गुणवत्ता के विचार के साथ आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें शिक्षा के विभिन्न आयाम ध्यान में रखने होंगे।

उद्देश्य - खोज जारी

लोगों को शिक्षित करने के पीछे कुछ उद्देश्य होते हैं। शिक्षा प्रदान करने वाले के उद्देश्य और जिन्हें यह प्रदान की जा रही है, उनके उद्देश्य, भिन्न हो सकते हैं। शिक्षा प्रदान करने वाले मान सकते हैं कि समाज के विभिन्न वर्गों के लिए शिक्षा के विभिन्न रूप उपयुक्त हैं, जैसा कि हम प्लेटो के कार्य में पाते हैं (प्लेटो, 1968)। उपरोक्त बात को बहुत खुले तौर पर कहना शायद मुनासिब न हो और संभव है कि इस प्रकार के उद्देश्यों को लोकतांत्रिक सार्वजनिक बहस के दायरे से बाहर रखा जाए। यह तय करने के लिए कि एक शैक्षिक व्यवस्था लाभकारी और समर्थन योग्य है या नहीं, उसके उद्देश्यों को स्थापित किया जाना एक कांटे का मुद्दा बन जाता है- और इतना ही महत्त्वपूर्ण यह तय करना हो जाता है कि ये उद्देश्य लाभकारी हैं या नहीं। बहुत से देश ऐसा नहीं करते और इनमें से अधिकतर बड़े आकार के देश हैं जिनके भीतर गहरे सामाजिक और आर्थिक विभाजन भी हैं। और जब उद्देश्यों को स्थापित किया भी गया है (जैसे कि बाद में, इंग्लैण्ड में) तो वे इतने अनाकर्षक और साधारण हैं कि उनका कोई लाभ नहीं है। जैसे-

उद्देश्य 1 : स्कूली पाठ्यचर्या का उद्देश्य होना चाहिए कि सभी शिक्षार्थियों को सीखने और कुछ हासिल करने के मौके उपलब्ध करवाए जाएं।

उद्देश्य 2 : स्कूली पाठ्यचर्या का उद्देश्य होना चाहिए कि शिक्षार्थियों के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा मिले और वे जीवन में मिलने वाले मौकों, जिम्मेदारियों तथा अनुभवों के लिए तैयार हो पाएं (शिक्षा एवं रोजगार विभाग 1999)।

इस प्रकार के उद्देश्य विवादास्पद तो शायद न हों लेकिन उनके विवादास्पद न होने की भी एक कीमत देनी पड़ती है- हमारे हाथ एक खास तरह की रिक्तता और भाव-शून्यता ही आती है। क्योंकि इन उद्देश्यों से असहमत हो पाना मुश्किल ही होता है, इसलिए वे बहुत कम ही कुछ ऐसा कहते हैं जो फायदेमंद हो। और वे पाठ्यचर्या तथा शिक्षणशास्त्र के विकास के लिए कोई दिशा-निर्देश भी नहीं देते, सिवाय बहुत ही व्यापक, आम-साधारण अर्थ में। लेकिन शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या और मूल्यांकन किए बिना शिक्षा के उत्पादों या उसके लिए निवेशों के बारे में किसी निर्णय पर पहुंचना मुश्किल हो जाता है। कभी-कभी, जैसे कि 'Bildung' की अवधारणा के समृद्ध स्वरूप में, इसे सूत्रबद्ध करना कठिन हो सकता है, हालांकि इस पर विल्म वौं हम्बोल्ट (Wilhelm von Humboldt) द्वारा की गई चर्चा और उन द्वारा Bildung के विचार का जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में विकास (जिसके लिए स्कूली जीवन और व्यावसायिक शिक्षा तैयारी मात्र हैं), इस बात को स्पष्ट और बोधगम्य तरीके से अभिव्यक्त करने के बहुत करीब आ जाता है (Allgemeine Menschenbildung की अवधारणा) (बेनर, 2003)।

उद्देश्यों तथा स्तरों के साथ उनके रिश्तों के बारे में कुछ और बातें

क्योंकि शिक्षा का काम हमें जीवन के लिए तैयार करना है, इसलिए उसे हमारी मनुष्यता के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए : हम, अद्वितीय व्यक्ति विशेष के रूप में; कामगारों के रूप में; परिवारों, समुदायों, व्यापक स्तर पर सामाजिक और राजनैतिक इकाइयों के सदस्यों के रूप में; धार्मिक समुदायों के सदस्यों के रूप में। और इन सभी संबंधों में से होकर गुजरता है नैतिकता और आध्यात्मिकता का विकास, जो जीवन के किसी एक दायरे का नहीं बल्कि उसके सभी दायरों का है। शिक्षा में इनमें से किसी एक या अन्य विशेषता की अवहेलना का मतलब है कि हम उसे कोई महत्त्व नहीं देते। उद्देश्य किसी एक आम, व्यापक विचार से नजदीकी संबंध रखते हैं, जिसके अंतर्गत देखा जाता है कि वे पूरे हुए या नहीं। यह आम, व्यापक विचार है शैक्षिक उत्तमता के स्तर का विचार (हेवर्ड इत्यादि, 2006)। शैक्षिक स्तर, चाहे वह अकादमिक हो, व्यावसायिक, नागरिक, धार्मिक या फिर नैतिक, एक कसौटी प्रदान करता है, इस आंकलन के लिए कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हुई है या नहीं, या यदि हुई है तो किस हद तक। इसलिए स्तर का होना एक पूर्व शर्त है, पैमाना है शैक्षिक प्रदर्शन का (प्रिंग, 1992) और इसे किसी एक प्रदर्शन के साथ गड़बड़ा कर नहीं देखना चाहिए। जब राजनीतिज्ञ कहते हैं कि 'शिक्षा में स्तर बढ़ रहे हैं' तो उनका अर्थ होता है कि मापदण्ड के संदर्भ में प्रदर्शन बेहतर हो रहे हैं।

शैक्षिक स्तरों के बारे में एक बात बहुत दिलचस्प है। क्योंकि उन्हें शैक्षिक उद्देश्यों के संदर्भ में तय किया जाता है, तो वे उद्देश्यों में बदलाव के साथ बदल भी सकते हैं, भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं। इसलिए स्तरों और प्रदर्शन की भाषा का सही इस्तेमाल करते हुए यदि यह कहा जाता है कि 'स्तर नीचे आ गए हैं' तो इसे शिकायत नहीं माना जाना चाहिए। हां, अगर यह बात इस अर्थ में कही जा रही हो कि शिक्षा के उद्देश्य तो वही हैं, उनमें तो बदलाव नहीं आया है, लेकिन उनकी सफलता को आंकने के लिए इस्तेमाल होने वाले मापदण्ड किसी वजह से वाजिब नहीं रहे (जैसे, इस वजह से कि उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अब पहले से कम ज्ञान की आवश्यकता है), तो बात और है।

यानी स्तरों को शैक्षिक उद्देश्यों के संदर्भ में आंका जा सकता है और निर्णय भी लिया जा सकता है कि वे उपयुक्त हैं या नहीं। शैक्षिक उद्देश्यों के बदलने पर तय किया जा सकता है कि कौनसे स्तर उपयुक्त हैं और कौनसे नहीं। ये उद्देश्य वक्त के साथ, शिक्षार्थियों से रखी गई अपेक्षा के मुताबिक, यानी उनसे अपेक्षित ज्ञान की व्यापकता या फिर उस ज्ञान की गहराई के संदर्भ में, बदल सकते हैं। इस प्रकार एक देश-विशेष में ऐतिहासिक दृष्टि से स्तरों की तुलना की जा सकती है और स्तर के ऊपर उठने या गिरने के संबंध में किन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता है। लेकिन हम इस संभावना को हमेशा ध्यान में रखेंगे कि उन स्तरों को निर्धारित करने वाले उद्देश्य स्वयं भी शायद वक्त गुजरने के साथ-साथ बदल गए हों। लेकिन इससे अधिक मुश्किल है स्तरों की समकालिक तुलना का विचार, जिसके अंतर्गत विभिन्न देशों के स्तरों की तुलना एक-दूसरे के साथ की जाती है। कारण स्पष्ट ही है। यदि स्तर और मापदण्ड उद्देश्यों के मुताबिक तय किए गए हैं तो मानकर चलना होगा कि उद्देश्य भी मोटे-तौर पर ऐसे हैं जिनकी तुलना एक-दूसरे के साथ की जा सकती है। तब ही तो तय किया जा सकेगा कि स्तर भी तुलना योग्य हैं या नहीं। (यानी उद्देश्य तुलनात्मक दृष्टि से एक से होंगे तभी तो स्तरों की भी तुलना की जा सकेगी), 'आर्थिक सहयोग एवं

विकास के लिए संगठन' (Organisation of Economic Co-operation and Development-OECD) के कई बड़े देशों में शैक्षिक उद्देश्यों को चिह्नित करने की अनिच्छा के चलते ऐसा कर पाना मुश्किल हो सकता है। ओ.ई.सी.डी. देशों की शैक्षणिक व्यवस्थाओं में चलाए गए 'शिक्षार्थियों का अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यांकन प्रोग्राम' (Programme for International Student Assessment - PISA/पीसा) जैसे प्रयोगों का औचित्य तभी समझ में आता है। यदि उद्देश्य साझे हों (जो कि नहीं हैं) या फिर अध्ययन के पीछे शिक्षा का कोई स्पष्ट उद्देश्य हो (जो है- समाज में पूर्ण तौर पर हिस्सेदारी निभाने के लिए तैयारी)। इस प्रकार यह प्रोग्राम (यानी पीसा), ओ.ई.सी.डी. तथा कुछ अन्य देशों के प्रदर्शन को एक ऐसे मापदण्ड के तहत आंकता है जो शैक्षिक व्यवस्था की आर्थिक प्रभावकारिता के न केवल प्रकट एवं सुस्पष्ट बल्कि अंतर्निहित उद्देश्य का साकार रूप हैं। लेकिन जर्मन यह शिकायत कर सकते हैं कि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो उनकी गणित की पाठ्यचर्या तो गणित- शिक्षा के अकादमिक उद्देश्यों के लिए बनाई गई है और इसलिए यदि उसे अनुपयुक्त मापदण्डों के तहत आंका जाता है (जैसे आर्थिक कारगुजारी को बढ़ावा देने या समाज में पूर्ण भागीदारी के उद्देश्य के लिए उपयुक्त मापदण्ड के तहत) तो उसका प्रदर्शन कमजोर रहेगा। यदि इस प्रकार के तुलनात्मक परीक्षणों से ऐसी जानकारी उत्पन्न की जानी है जिसके आधार पर उन देशों में कुछ कार्य किया जा सके, तो यह आवश्यक हो जाता है कि इन परीक्षणों का संबंध संबद्ध देश में लागू मापदण्डों के साथ हो- और ये मापदण्ड उस देश द्वारा उचित माने गए उद्देश्यों से जुड़े हों।

इस प्रकार उपयुक्त स्तर निर्धारित करने के लिए उद्देश्यों से मार्गदर्शन मिल सकता है और मापदण्डों को कसौटी बनाते हुए, प्रदर्शन तथा कारगुजारी के माध्यम से अप्रत्यक्ष तौर पर संकेत मिल सकता है कि किस प्रकार उन उद्देश्यों को पूरा किया जा रहा है। लेकिन सीखने के परिणाम शिक्षा के उद्देश्यों और स्तरों, दोनों की एवज में कार्य करते प्रतीत होते हैं। सीखने का परिणाम उस ज्ञान, उन दक्षताओं, रवैय्यों और समझ को बयान करता है जिनका एक शिक्षार्थी द्वारा किसी शैक्षणिक कार्यक्रम के अंत तक या फिर सत्यापन के एक विशेष स्तर पर पहुंचकर, हासिल किया जाना अपेक्षित होता है। लेकिन दलील दी जा सकती है कि सीखने के परिणाम शिक्षा के उद्देश्यों और स्तरों, दोनों में से किसी की भी एवज में असरदार ढंग से कार्य नहीं कर पाते। वे उद्देश्यों के तौर पर असफल रहते हैं, क्योंकि वे उन्हें बहुत ही संकीर्णता से, व्यक्तिगत गुणों तक (न कि समाज के उद्देश्यों के तौर पर) सीमित करके परिभाषित करते हैं। और वे स्तरों के रूप में भी असफल रहते हैं क्योंकि उनका संबंध केवल इससे रहता है कि एक परिणाम हासिल किया जा सका है या नहीं- इससे नहीं कि उसे कितने अच्छे से पाया जा सका है। मसलन, यदि स्तर 2 के परिणाम के मुताबिक आवश्यक है कि व्यक्ति लॉरी को सावधानी और सुरक्षा से चला पाए, तो क्या लॉरी चलाने संबंधी स्तर 3 के परिणाम द्वारा इस शर्त को छोड़ दिया जाएगा (बहुत कम संभावना है) या फिर स्तर 3 के परिणाम में निहित है कि इस स्तर का चालक स्तर 2 के चालक से भी अधिक सावधानी से लॉरी चला पाए ? यह पचने वाली बात नहीं है, क्योंकि लॉरी को सावधानी और सुरक्षा से चला पाना एक विशुद्ध, संपूर्ण मापदण्ड है। निवेश संबंधी उपायों में यह समस्या नहीं आती। वह इसलिए कि उनका संबंध लगातार अग्रसर तथा बढ़ते चले जाने वाली संचयी पाठ्यचर्या से रहता है और इसका प्रयोग न केवल यह तय करने के लिए किया जा सकता है कि प्रासंगिक स्तरों को हासिल किया जा सका है या नहीं, बल्कि यह भी कि किस हद तक यह हो पाया है- या फिर विकल्प के रूप में, जैसा कि इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में है, यह तय करने के लिए कि स्तरों के विकसित होते पैमाने पर किन स्तरों तक पहुंचा जा सका है। ऐसे में यह मानकर चला जाएगा कि स्तर 3 की योग्यता हासिल कर चुका लॉरी चालक स्तर 2 की योग्यता पहले ही हासिल कर चुका होगा।[3]

तो, स्तरों को वास्तव में उद्देश्यों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है, जिनके लिए वे पैमाना उपलब्ध करवाते हैं। इसी प्रकार स्तरों को पाठ्यचर्या के संदर्भ में भी समझना होगा, क्योंकि पाठ्यचर्या भी किन्हीं उद्देश्यों को हासिल करने हेतु तैयार की जाती है। स्तरों से न केवल यह आंका जा सकता है कि उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है या नहीं, वे पाठ्यचर्या के लिए एक लक्ष्य भी प्रदान करते हैं- वे एक विशेष पाठ्यचर्या के अनुसरण की सफलता या असफलता का पैमाना हैं, और शिक्षार्थियों के लिए वे इस बात का पैमाना हैं कि किस हद तक उस पाठ्यचर्या को सफलता से लागू किया गया। मैं 'पाठ्यचर्या' को एक विशेष अर्थ में ले रहा हूं- 'शिक्षा की निर्धारित विषयवस्तु' के तौर पर, जैसा खाका गुणवत्ता और शिक्षा (Quality and Education - Winch, 1996) में खींचा गया है। तो स्तर उद्देश्यों की तरफ 'ऊपर' देखते हैं, और पाठ्यचर्या की ओर 'नीचे' को, और उन्हें इन दोनों आयामों के संदर्भ में समझना होगा। इनमें से किसी एक के संदर्भ में न देख पाना या इससे भी बदतर, इनमें से किसी के भी संदर्भ में न देख पाना संभ्रांति और खलबली का नुस्खा है। लेकिन यही तो शिक्षा के प्रति 'उत्पाद' आधारित दृष्टिकोणों का खतरा है। वे उद्देश्यों तथा पाठ्यचर्या, दोनों के बारे में संभ्रांति को बढ़ावा देते हैं।

उत्पादों तथा निवेशों के बीच संबंध

उत्पादों और निवेशों की भाषा इतनी स्पष्ट नहीं है जितना कि पहली नजर में लग सकती है। यह अवधारणात्मक दृष्टिकोण अर्थशास्त्र तथा निर्माण-उद्योग के क्षेत्रों से लिया गया है। निश्चित पूंजी (मशीनरी और कच्चा माल) और परिवर्तनशील पूंजी (श्रम) को निवेश के रूप में तथा निर्मित वस्तुओं को उत्पाद (गुणवत्ता और मात्रा, दोनों समेत) के रूप में लिया जाता है। व्यवस्था की सफलता या असफलता को उत्पाद के प्रति निवेश के अनुपात की शक्ल में, एक प्रकार से उत्पादकता के मूल्य के तौर पर मापा जा सकता है। लेकिन यह चीजों को देखने का संकीर्ण नजरिया है, यहां तक कि आर्थिक गतिविधि के संदर्भ में भी। इससे हमें यह पता नहीं लग पाता कि उत्पाद विशिष्ट लक्षण (स्तर) लिए हुए है, मूल्यवान है कि नहीं, या कि वह विशेष व्यक्तियों की बनिस्बत समाज के लिए हितकारी (उद्देश्य) है या नहीं। दूसरे शब्दों में, उद्देश्यों और स्तरों के संदर्भ में यह उपमा पर्याप्त रूप से पूरी नहीं होती। हम शायद व्यवस्था की प्रभावकारिता को इस संदर्भ में तो आंक पाएं कि एक मापदण्ड (विशिष्टता) को पूरा किया जा सका या नहीं, और किस हद तक, लेकिन इससे हमें यह ज्ञान नहीं होता कि वह विशिष्टता उपयुक्त है या नहीं, और न ही यह कि किस प्रकार आर्थिक गतिविधि के व्यापक उद्देश्यों से उसका संबंध बनता है।

यह समझने के लिए कि कुछ उत्पादों को कैसे हासिल किया गया है, उन प्रक्रियाओं को भी जानना होगा जिनके योगदान से उत्पाद तक पहुंच बन पाई और यह हमें निवेशों के महत्त्व की ओर उसके बारे में विचार करने की ओर, ले जाता है। इसके अलावा, उत्पाद संबंधी कदम शायद हमें इस बारे में भी पर्याप्त जानकारी न दे पाएं कि क्या सीखा जा चुका है। उदाहरण के तौर पर, यह तय कर पाने के लिए कि उत्पादों की विस्तृत प्रकृति क्या है, नौकरी देने वाले द्वारा सम्भवतः निवेशों को और अधिक ध्यान से देखे जाने की जरूरत होगी। यूरोपीय संदर्भ में इस बात के प्रमाण हैं कि दूसरे देशों से भाड़े पर मजदूरों को लेने वाले मालिकों की दिलचस्पी बिलकुल ऐसा ही करने में होती है। अधिकृत तौर पर उठाए गए उत्पाद संबंधी कदमों से उन्हें पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती; उन्हें यह मालूम होना होगा कि उम्मीदवार की व्यावसायिक शिक्षा के दौरान क्या कुछ हुआ, यानी उन्हें कैसे और क्या सिखाया गया और कैसे उनका मूल्यांकन किया गया।

गुणवत्ता को उत्पादों के जरिए आंकने से जुड़ी समस्याएं, ऐसा मानकर चला जाता है कि, इंग्लैण्ड जैसी जवाबदेही वाली व्यवस्थाओं में, हासिल किए गए उत्पादों से हमें पता लग पाता है कि उद्देश्य हासिल किए जा रहे हैं या नहीं। लेकिन पाठ्यचर्या से स्वतंत्र रहकर शायद उद्देश्यों को स्तरों के संदर्भ में स्पष्ट और बोधगम्य तरीके से थोड़ा-बहुत ही अभिव्यक्त किया जा सके या शायद पर्याप्त ढंग से यह न ही हो पाए। ऐसा ही हमने ऊपर सावधानी और सुरक्षा वाले लॉरी के उदाहरण में पाया है। यानी संभव है कि स्तर को हासिल कर पाना प्रयोग में लाई जा रही पाठ्यचर्या से संबंध रखता हो, और किसी दूसरे संदर्भ में, जहां एक अलग पाठ्यचर्या हो, यह बात लागू न हो। मेरे दिमाग में गणित के उदाहरण हैं, जहां शायद किसी गणितीय कार्य का किया जाना उसकी आधारभूत पाठ्यचर्या के संदर्भ में तो काफी हो, लेकिन रोजमर्रा के हालात में समस्या हल करने की तकनीक के तौर पर नाकाफी हो। इससे भी बड़ी समस्या है कि कुछ ही उद्देश्यों को उत्तमता के स्तरों के लिहाज से ढाला जा सकता है और गुणवत्ता के पैमाने के रूप में इन पर जरूरत से अधिक निर्भरता हो तो कार्य-प्रदर्शन की विकृत तस्वीर मिल सकती है। क्योंकि बिना कठिनाई के इन्हें स्तरों के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसलिए सीखने के परिणामों के तौर पर इनकी अभिव्यक्ति और भी अधिक कठिन होगी। व्यावसायिक योग्यता के लिए विशिष्ट जर्मन निर्देशों में क्षमताओं एवं दक्षताओं का खाका इस बात की ओर खास ध्यान दिलाता है कि किसी व्यक्ति में प्रत्येक क्षमता एवं दक्षता के होने का अर्थ क्या है : इन्हें हासिल कर पाना व्यवस्था के उद्देश्यों का ही एक हिस्सा है। लेकिन इन्हें सख्ती से उत्तमता के स्तरों या सीखने के परिणामों से बांधा नहीं गया है। बल्कि इन्हें Ausbildung या व्यवसाय संबंधी शिक्षा के समापन पर होने वाले संपूर्ण, व्यापक आंकलन के हिस्से के तौर पर ही मूल्यांकित किया जाता है। कई अकादमिक और व्यवसाय संबंधी परिणाम ऐसे पैमानों से प्रभावित हो जाते हैं लेकिन व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक परिणामों पर यह प्रभाव काफी कम रहता है। उत्पाद से संबंधित गुणवत्ता के पैमानों के साथ एक और समस्या यह है कि वे प्रदर्शन को विकृत कर सकते हैं : यह खास तौर से तब होगा जब वे बाजार या प्रशासकीय अनुशासनों के माध्यम से प्रतिबंधों और इनामों से संबंध रखते हों। उदाहरण के लिए, यदि किसी को दो बिन्दुओं, 'क' और 'ख', के बीच मूल्यवर्धित मूल्यांकन पर आंका जाता है तो 'क' पर हुए प्रदर्शन को थोड़ा दबाने का लालच रहता है ताकि 'क' और 'ख' के बीच हुई प्रगति अधिक प्रभावशाली दिखे। इससे भी चिंता का विषय यह है कि मूल्य-संवर्धन जैसे उत्पाद संबंधी मंझे हुए पैमानों के इस्तेमाल द्वारा वास्तव में शायद शिक्षा से स्तर आरंभिक निवेश आंके जा रहे हों (यानी शिक्षार्थियों की सामाजिक-वर्ग संबंधी संरचना)। कम से कम व्यवस्था के तुलनात्मक प्रदर्शन को आंकने के लिहाज से तो सम्भवतः ऐसा ही हो। यहां समस्या यह है कि प्रगति की व्याख्या करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनशील कारक- शिक्षार्थियों की पूर्व उपलब्धि- स्वयं

अन्य कारकों से उत्पन्न हुआ है, जिनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारक है प्रदर्शन पर सामाजिक वर्ग का प्रभाव। इससे भी अधिक चिंता का विषय है कि मूल्य-वर्धित अंकों का संबंध उत्पाद संबंधी कदमों से बैठाया जा सकता है ताकि ऐसा लगे कि प्रगति का पैमाना और उत्पाद का पैमाना एक-सी ही परिघटना को माप रहे हैं। और क्योंकि उत्पाद के पैमाने और सामाजिक वर्ग में आपसी संबंध है, इसलिए अमूमन मूल्य-वर्धित पैमाने और सामाजिक वर्ग में भी संबंध बनता है। इसके चलते स्पष्ट तौर पर यह आभास होता है कि उत्पाद संबंधी कदम इस दृष्टिकोण का एक परिष्कृत पुनर्कथन हैं कि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो सामाजिक वर्ग से जुड़ी प्रतिष्ठा शैक्षिक सफलता का मुख्य निर्धारक है (गोरार्ड, 2006)।

मेरी समझ से कहानी का अंत यहीं नहीं हो जाता, क्योंकि इस विश्लेषण के अन्तर्गत 'मूल्य-वर्धक' में शिक्षार्थियों की सामाजिक पृष्ठभूमि और नए अनुसंधान जैसे सांदर्भिक कारकों के प्रभाव और उनके अनुमान शामिल नहीं हैं। हाल के अनुसंधान (वेबर तथा बटलर, 2007) से यह इशारा भी मिलता है कि 'मूल्य-वर्धक' के हिसाब में ऐसे अनुमानों के शामिल किए जाने से यकीनन उस मूल्यांकन में महत्त्वपूर्ण तौर पर बदलाव आ जाता है जिसके अंतर्गत शिक्षार्थी की प्रगति में स्कूल के योगदान को देखा जाता है।[5] इसका प्रत्युत्तर यह है कि, हालांकि एक से सामाजिक क्षेत्रों के अच्छे और बुरे स्कूलों के प्रदर्शन में पैमाइश के काबिल अंतर रहता है, सामाजिक वर्ग और शैक्षिक उपलब्धि के बीच का आधारभूत मजबूत संबंध तो वैसा ही रहता है।

रेखाचित्र-1 : मूल्य-वर्धित तथा पूर्ण, परिशुद्ध उपलब्धि में संबंध 2004

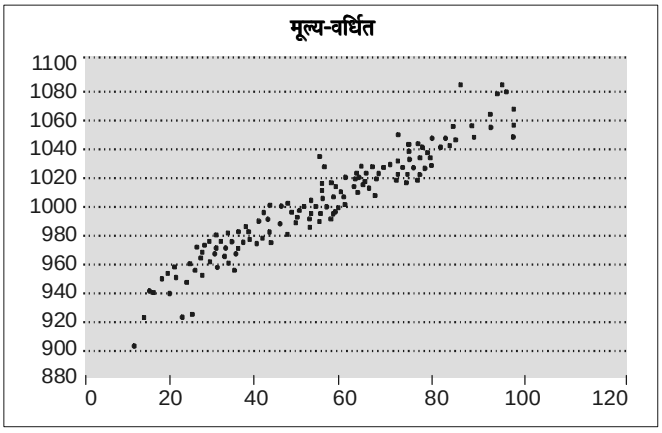

समानांतर स्तंभ माध्यमिक शिक्षा में सामान्य प्रमाणपत्र (General Certificate in Secondary Education - GCSE) के अंक मापता है, जबकि खड़ा स्तंभ 11 वर्ष की आयु और 16 वर्ष की आयु के बीच (यानी KS2 तथा KS4 के बीच) पूर्ण परिशुद्ध माप के समय तक के संवर्धन को मापता है। आधार रेखा का मूल्य-वर्धित माप 1000 है, इससे ऊपर कुछ भी आशा से अधिक मूल्य-वर्धित है और इससे नीचे कुछ भी, आशा से कम। मूल्य-वर्धित और पूर्ण, परिशुद्ध उपलब्धि के बीच का रैखिक, एक-आयामी संबंध उल्लेखनीय है। स्रोत : गोरार्ड, 2006, पृष्ठ 239।

निवेशों के माध्यम से गुणवत्ता-पैमाइश

आइए, अब गुणवत्ता को मापने-आंकने के एक वैकल्पिक नजरिए को देखें- इस बार 'निवेशों' के माध्यम से। इस परिस्थिति में पाठ्यचर्या, मूल्यांकन तथा शिक्षणपद्धति की प्रक्रियाओं को जांचा जाता है। तर्क तो यह होगा कि उत्पाद संबंधी कदमों से कार्य करते हुए पीछे को आया जाए, यह पता लगाने के लिए कि इनमें किसका योगदान रहता है। मकसद उसकी गुणवत्ता को आंकने का भी होगा। इसके अलावा, यदि शिक्षा के कुछ मुख्य उद्देश्यों को स्तरों के लिहाज से बहुत मुश्किल के साथ ही अभिव्यक्त किया जा सकता है, तो इस बात से बचना मुश्किल होगा कि पाठ्यचर्या, शिक्षणशास्त्र तथा रचनात्मक आंकलन के लिहाज से निवेशों को ध्यान में लिया जाए। कुछ भी हो, गुणवत्ता का निवेश-आधारित आंकलन रामबाण का काम नहीं करता। सबसे बड़ा खतरा निवेश संबंधी कदमों के व्यक्तिपरक होने का है (देखिए, नीचे 'अच्छी प्रथाओं' पर विमर्श)। निवेश-आंकलन में उत्पाद-आधारित कदमों को आयातित करने का लालच भी रहता है (उदाहरण के लिए 19वीं शताब्दी इंग्लैण्ड में निरीक्षण के लिए संशोधित आचार-संहिता के तहत 'नतीजों पर आधारित मेहनताना')। न्यूनतम मेहनताना तथा प्रदर्शन से संबंधित वेतन के रूप में आज भी ऐसे ही खतरे मौजूद हैं जिनके तहत शिक्षार्थियों का अकादमिक प्रदर्शन आंकने के माध्यम से शिक्षण पद्धति की विदित प्रभावकारिता को पुरस्कृत किया जाता है। ये इस खतरे की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं कि हमने निवेश के संतोषजनक माप निर्धारित नहीं किए हैं। शायद ऐसा कर पाना बहुत मुश्किल भी हो। ऐसा कर पाने के लिए शायद लाभदायक होगा कि हम थोड़ा-सा मार्ग-परिवर्तन करते हुए आगे बढ़ें। कुछ देर के लिए हम इंग्लैण्ड के संदर्भ में निवेश आधारित कदमों के रास्ते से होकर गुजरते हैं ताकि हम समझ पाएं कि किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

इंग्लैण्ड में शैक्षिक निरीक्षण का संक्षिप्त इतिहास

इंग्लैण्ड में शैक्षिक निरीक्षण की शुरुआत 19वीं सदी के तीसरे दशक में हुई। यह कक्षाओं में चल रही प्रक्रियाओं के बारे में निरीक्षकों के

विवेक और समझदारी पर आधारित रहता था। 'संशोधित आचार-संहिता' 19वीं सदी के छठे दशक से नौवें दशक तक रही और इसके तहत निरीक्षक से आशा की जाती थी कि वह शिक्षार्थियों को जांचे-परखे और फिर उनके 'उत्पादित' प्रदर्शन के आधार पर शिक्षक की तनख्वाह निर्धारित करे। इस तरीके को त्यागे जाने के बाद उसका स्थान लेने वाले प्रारूप को हम 'पारखी' प्रारूप का नाम दे सकते हैं, जिसमें एक निरीक्षक शिक्षा के अपने अवलोकन के आधार पर उसकी गुणवत्ता की बानगी लेता था- उसी प्रकार जैसे अंगूरी शराब खरीदने वाला कोई व्यक्ति पुरानी, उत्कृष्ट शराब का नमूना लेता है। पर्यवेक्षक के पास अधिकार रहता था, और कभी-कभी अनुभव भी, लेकिन आंकलन तो मुख्य तौर पर व्यक्तिपरक ही होता था, तब भी जबकि उसका आधार वस्तुपरक हो। डेविड ह्यूम (1993) ने अपने निबंध 'ऑव द स्टैण्डर्ड ऑव टेस्ट' में इस प्रक्रिया में निहित समस्याओं की बहुत अच्छी व्याख्या की है।

> मेरे दो बंधुओं से एक बार एक बड़े पीपे की शराब पर, जिसे बहुत पुरानी और उत्कृष्ट माना जा रहा था, अपनी राय देने को कहा गया। मेरे एक बंधु ने उसे चखा, उस पर कुछ विचार किया। फिर गंभीर चिंतन के बाद फैसला दिया कि शराब अच्छी है लेकिन उसे चमड़े के स्वाद का हल्का-सा एहसास हुआ है। दूसरे बंधु ने भी वही सावधानियां बरतीं और उसने भी शराब के हक में ही फैसला दिया। लेकिन उसने कहा कि उसे लोहे के स्वाद का हल्का-सा एहसास हुआ है। आप कल्पना नहीं कर सकते कि इस फैसले पर उन दोनों का कैसा मजाक उड़ाया गया। लेकिन आखिर में हंसा कौन ? पूरा पीपा जब खाली कर लिया गया तो उसकी तली में एक चमड़े के पट्टे के साथ बंधी एक पुरानी चाबी मिली (पृष्ठ 141)।

इस उदाहरण के बहुत से निहितार्थ हैं। मैं उन सब की ओर तो ध्यान नहीं दिला सकता लेकिन यह उदाहरण पारखी प्रारूप में निहित समस्याओं को बढ़िया से प्रदर्शित करता है। इनमें से एक तो यह तथ्य हो सकता है कि एक पर्यवेक्षक वास्तविकता के एक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करता है लेकिन दूसरे पक्ष को पूरी तरह अनदेखा कर देता है। ऐसा करते हुए वह काफी हद तक अपनी पसंद, अनुभव और पूर्व-धारणा पर निर्भर रहता है। गिरते हुए अदब-लिहाज के ऐसे समय-काल में जब 'उत्पादकों की ताकत' से संबद्ध संभ्रांत वर्ग को शक की निगाह से देखा जाने लगा, 1992 में इस प्रारूप का स्थान 'निरीक्षण की निर्देश-पुस्तिका' द्वारा ले लिया गया प्रतीत होता है। भविष्य में सभी निरीक्षण इसी के मुताबिक किए जाने थे। इस प्रारूप की अच्छाई थी कि इसके तहत् शिक्षण से की जा रही अपेक्षाओं के मापदण्ड तय कर दिए गए। लेकिन समस्या इन मापदण्डों की व्याख्या की थी। बाद में किए गए सुधारों एवं संशोधनों के बावजूद यह समस्या बनी रही। 2004 में मापदण्ड इस प्रकार थे :

'शिक्षक जो भी पढ़ा रहे हैं, उस पर उनका अच्छा अधिकार और नियंत्रण होना चाहिए।' उनकी योजना प्रभावशाली होनी चाहिए- सीखने के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिएं।

- उन्हें शिक्षण की उपयुक्त रणनीतियां प्रयोग में लानी चाहिएं।
- उन्हें शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित करना चाहिए, उनमें रुचि उत्पन्न करनी चाहिए और उन्हें व्यस्त रखना चाहिए।
- उन्हें ऐसे तौर-तरीके और साधन इस्तेमाल करने चाहिएं जिनसे शिक्षार्थी प्रभावशाली ढंग से सीख पाएं।
- समय का कारगर इस्तेमाल हो।
- व्यवहार और आचरण के उच्च स्तर पर जोर दिया जाना चाहिए।

यह कहे जाने की आवश्यकता नहीं है कि काफी कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि 'अच्छा', 'स्पष्ट', 'उपयुक्त', 'कारगर' और 'उच्च' जैसे शब्दों की सांदर्भिक व्याख्या से हम क्या समझते हैं। स्पष्ट तौर पर तय किए गए मापदंडों की अनुपस्थिति के चलते खतरा है कि निरीक्षणकर्ता टीम के सहारे पारखी प्रारूप पिछले दरवाजे से चुपचाप आ पहुंचे। इन शब्दों की साझा समझ का अभाव भी एक और बहुत ही अहम् और निर्णायक बात है। शिक्षकों, निरीक्षकों और अभिभावकों में यदि यह साझा समझ हो तो इस प्रकार के निर्णयों को व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाएगा और उन पर विश्वास भी जम जाएगा।

इंग्लैण्ड में निरीक्षण की व्यवस्था का नवीनतम विकास इस अर्थ में बहुत ही दिलचस्प है। सन् 2004 में जारी की गई निरीक्षण संबंधी आचार-संहिता में निरीक्षकों को दो तरह के कारकों को ध्यान में रखने को कहा गया है :

1. स्कूल द्वारा अपने प्रदर्शन का स्व-मूल्यांकन।
2. मूल्य-वर्धन या प्रगति को ध्यान में रखते हुए शिक्षार्थियों द्वारा किया गया विकास।

वर्ष 2006 से प्रत्येक शिक्षार्थी पर विस्तृत जानकारी स्कूलों को मुहैया करवाई जाएगी। उसमें व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों तरह की विशेषताओं को ध्यान में रखा जाएगा और ऐसा करते हुए स्कूल शिक्षार्थियों के अपेक्षित नतीजों की भविष्यवाणी कर पाएंगे। स्कूल

की प्रभावकारिता तथा उसमें किए जा रहे शिक्षण पर एक राय बनाने के लिए आवश्यक होगा कि निरीक्षणों के तहत इन सब जानकारियों को ध्यान में रखा जाए। आंकड़ों और ब्यौरे में यह सब शामिल होगा- शिक्षार्थियों का प्रदर्शन; लिंग, कक्षा में आनुपातिक आयु और प्रथम भाषा; भले ही शिक्षार्थी स्कूल में निःशुल्क भोजन का हकदार है या नहीं; शिक्षार्थी के डाक-कोड क्षेत्र में, जनसांख्यकीय ब्यौरे से संबंधित अभाव का सूचकांक। आंकड़ों के आधार पर मूल्यांकित इन गुणांकों को एक संरचनात्मक समीकरण (जो पहले के प्रदर्शन को भी शामिल करता हो) में कारक के रूप में लिया जाता है और इससे ही प्रदर्शन की भविष्यवाणी की जाती है। लेकिन हमें यह ध्यान देना चाहिए कि इस अमल को ज्यादा से ज्यादा एक अनिश्चित विज्ञान ही कहा जा सकता है और इसमें गलती की गुंजाइश का अर्थ है कि कई शिक्षार्थियों की अनुमानित प्रगति एक दूसरे से काफी मेल खाती हुई सी होगी। इस प्रकार निरीक्षण का निवेश-आधारित दृष्टिकोण उत्तरोत्तर कार्य-प्रदर्शन के उत्पाद-आधारित पैमाने के साथ बंधा हुआ है, जिसका इरादा यह है कि ऊपर अभिव्यक्त निर्णयों को संयमित किया जा सके। जान पड़ता है कि स्वस्थ प्रथाओं पर लिए जाने वाले फैसलों में वस्तुपरकता लाने की चिंता है ताकि इस बात की कम ही गुंजाइश रहे कि निरीक्षकों और निरीक्षण टीमों के मूल्य-मान्यताओं पर आधारित फैसले व्यक्तिपरक हों।

'अच्छे अभ्यास' की समस्या

यह कहने से कोई लाभ होने वाला नहीं है कि निरीक्षकों में 'अच्छे अभ्यास' को पहचानने और उसे प्रचारित-प्रसारित करने की काबिलियत होनी चाहिए। क्योंकि जैसा रॉबिन अलेग्जैंडर (1992) ने कई साल पहले ध्यान दिलाया था, 'अच्छा अभ्यास' एक ऐसा शब्द है जिसकी कम से कम चार महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं की जा सकती हैं।

1. अच्छा अभ्यास वह है जो शिक्षक के तौर पर मेरे मूल्यों के साथ मेल खाए।
2. अच्छा अभ्यास वह है जिसके साथ शिक्षक के तौर पर मैं सहज महसूस करता हूं।
3. अच्छा अभ्यास वह है जिसे मैं आधिकारिक तौर पर (जैसे प्रधानाध्यापक या निरीक्षक के रूप में) कक्षा-कक्ष में लागू कर सकता हूं।
4. स्वस्थ प्रथा वह है जो शिक्षार्थियों की प्रगति के लिए सबसे कारगर रास्ते के तौर पर प्रमाणित हो चुकी हो।

'अच्छे अभ्यास' की इन व्याख्याओं के बीच के संबंध को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि तभी हम शिक्षाशास्त्रीय आचरण से जुड़े निवेश-संबंधी कदमों के औचित्य और व्यावहारिकता को भी समझ पाएंगे। यदि शिक्षकों के मूल्यों में भिन्नता है तो शिक्षकों के बीच अच्छे अभ्यासों में भी भिन्नता की संभावना रहेगी। ऊपर दी गई व्याख्याओं में पहली व्याख्या को लेते हैं। (यानी, अच्छा अभ्यास वह है जो शिक्षक के तौर पर मेरे मूल्यों के साथ मेल खाए)। यह हमारी प्रस्तुति की शुरुआत में चिह्नित एक मुद्दे की ओर इशारा करती है- कि बहस-मुबाहिसे और चिंतन-मनन से उत्पन्न उद्देश्यों पर सहमति, जिसे शिक्षकों द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया हो, इस क्षेत्र में आपसी समझ बनाने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षकों को इन मूल्यों की व्यक्तिगत व्याख्याएं करने की इजाजत नहीं होगी, बल्कि यह कि कुछ हद तक सर्व-सहमति होनी होगी। दूसरी व्याख्या (यानी, स्वस्थ प्रथा वह है जिसके साथ शिक्षक के तौर पर मैं सहज महसूस करता हूं, ऐसी प्रथा की ओर इशारा करती है जो शिक्षक के उद्देश्यों से मेल खाती हो और शिक्षक के स्वभाव तथा क्षमताओं या शायद उसकी आदतों के भी अनुकूल हो। एक ओर तो शिक्षण का तौर-तरीका शिक्षण करने वाले की रुचि के अनुकूल होना चाहिए। लेकिन दूसरी ओर, स्थापित रोजमर्रा का आरामदायक होना इस बात का उचित कारण नहीं माना जा सकता कि पहले से अपनाई जा रही प्रथा को बनाए रखा जाए। यह खास तौर से तब और भी अधिक लागू होने वाली बात है जब, उदाहरण के लिए, जिस तौर-तरीके में शिक्षक सहज महसूस करता है, उसके तहत कुछ या सभी शिक्षार्थियों की क्षमताओं को बहुत ही कम आंककर देखा जा रहा हो। तीसरी व्याख्या (यानी, अच्छा अभ्यास वह है जिसे मैं आधिकारिक तौर पर (जैसे प्रधानाध्यापक या निरीक्षक के रूप में) कक्षा-कक्ष में लागू कर सकता हूं, एक अधिकृत, सत्ताशील व्याख्या पर आधारित है। क्योंकि कोई व्यक्ति किसी एक कार्यविधि की पालना को सुनिश्चित करवा सकने की स्थिति में है, इससे यह बात नहीं निकलती कि वह रास्ता अच्छा ही है।

ऐसा तभी हो सकता है यदि कम से कम दो शर्तें पूरी की जाएं। पहली यह कि अभ्यास का उद्देश्य उपयुक्त हो और दूसरी यह कि उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के अधिकृत साधन हों। इनमें से पहली जरूरत इस बात से संबंध रखती है कि विचाराधीन अधिकारी के पास शिक्षा के उद्देश्य और मूल्यों के वर्णन या व्याख्या का अधिकार वास्तव में है भी या नहीं। ऐसा तभी हो सकता है यदि ये अधिकारी किसी न किसी अर्थ में उन मूल्यों और उद्देश्यों के अभिरक्षक हों जिन पर सहमति बनी है। लेकिन यदि समाज ऐसे उद्देश्यों के समूह

पर एकमत नहीं होता जिन पर सार्वभौमिक नहीं, तो कम से कम आम सहमति ही बने, तो ऊपर कही गई बात संभव नहीं हो पाएगी। यह समझ पाना बहुत मुश्किल है कि इस शर्त के पूरा हुए बिना श्रेणीबद्ध शैक्षिक संगठन के प्रशासनिक ढांचे में स्थापित अधिकारी किस प्रकार ऐसे उद्देश्यों और मूल्यों की व्याख्या कर पाएगा। दूसरी शर्त का पूरा होना भी मुश्किल है क्योंकि इसके लिए प्रमाण का होना जरूरी है कि प्रयोग में लाए गए साधन चिह्नित उद्देश्यों और मूल्यों को पाने के लिए उपलब्ध साधनों में सबसे प्रभावशाली हैं।

सारभूत बात तो यह है कि यह दूसरी शर्त अच्छे अभ्यासों की चौथी व्याख्या से जुड़ी है (यानी, अच्छा अभ्यास वह है जो शिक्षार्थियों की प्रगति के लिए सबसे कारगर रास्ते के तौर पर प्रमाणित हो चुकी हो), और हम देख सकते हैं कि यह पहली शर्त पर आश्रित है, क्योंकि सवाल पैदा होता है कि 'प्रगति, किस ओर ?' इसलिए हम इस बात के लिए जो भी प्रमाण दें कि शिक्षण का अमुक तरीका सीखने में प्रगति की ओर ले जाता है, उसकी प्रासंगिकता तभी होगी अगर हम उसे उन उद्देश्यों और मूल्यों से संबद्ध कर पाएं जिन्हें पूरी व्यवस्था का आधार माना गया हो। लेकिन अगर इस मुद्दे को तय कर लिया जाए तो यह सवाल करना भी मुमकिन लगता है कि प्रमाण द्वारा शिक्षण के किसी एक विशेष तरीके की तस्दीक हो रही है या नहीं ? आवश्यक प्रमाण का स्तर निश्चित तौर पर बहुत ऊंचा होना होगा। यह तो तय है कि तस्दीक पूर्ण तौर पर निश्चित न हो, तो भी अभ्यास की तस्दीक कम से कम विश्वास की तर्कसंगत हद तक तो होनी ही चाहिए।

कानून की दुनिया से उदाहरण लेकर बात को समझें तो अगर हमारे सबूत यह न भी दिखा पाएं कि अभ्यास 'क' ही उद्देश्य 'ख' को तर्कसंगत शक से परे की हद तक हासिल कर पाने का सबसे बेहतर तरीका है, तो बची हुई, जानी-समझी संभावनाओं के दम पर हमारे द्वारा कम से कम यह मानकर चलना तो उचित ही होगा कि अभ्यास 'क' किसी भी अन्य विकल्प के मुकाबले अधिक प्रभावशाली है। लेकिन अब तक शैक्षिक छानबीन ऐसे निर्णय देने में बहुत कुछ प्रभावकारी नहीं रही है। वह अवधारणात्मक स्तर पर अस्पष्ट और असंगत दृष्टिकोणों को रद्द करने में अधिक प्रभावशाली रही है। उन दृष्टिकोणों के परित्याग में भी यह सफलता मिली है जिन्हें सिद्ध करने को बहुत कम सबूत हैं। लेकिन कारगर दृष्टिकोणों को चिह्नित करने में वह इतनी असरदार नहीं रही। इससे भी अधिक चिंता की बात तो यह है कि अवधारणात्मक स्पष्टता के अभाव वाले या बहुत कम प्रामाणिक आधार वाले दृष्टिकोण कभी-कभी शिक्षकों में और उनके ऊपर बैठे अधिकारी वर्ग में भी बहुत अधिक लोकप्रिय होते हैं। ऐसे कई लज्जाजनक उदाहरण हैं। सबसे ताजा उदाहरण है सीखने की शैलियों को दिया जा रहा समर्थन और बढ़ावा, जिसके तहत इन्हें विभिन्न शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के बीच की भिन्नता को समझने का तरीका मान लिया गया है (कोफील्ड, मोस्ली, हॉल, तथा एक्लस्टोन, 2004)। यह शैक्षिक अनुसंधान के बारे में पूर्ण रूप से निराशावादी राय नहीं है, बल्कि पूरी सावधानी और बारीकी से कार्य करने तथा उसकी पुनरावृत्ति के उच्च स्तरों की वकालत है, जो इस समय कम ही शोध-कार्यों में हो पा रहा है। जैसा कि हम देखेंगे, ऐसा नहीं है कि पूरी सावधानी और बारीकी से किया गया अनुभवसिद्ध शोध शैक्षिक व्यवहार का आधार न बन पाए।

सांदर्भिक मूल्यवर्धन के लिए उठाए जाने वाले ऊपर वर्णित कदमों का प्रारूप इस तरह से तैयार किया जाता है कि निरीक्षकों द्वारा इस बारे में बनाई गई राय को प्रामाणिक समर्थन मिल पाए कि 'अच्छा अभ्यास' का प्रयोग हो रहा है या नहीं। इन कदमों द्वारा यह आधे-अधूरे ढंग से ही हो पाएगा लेकिन यदि वे बची हुई संभावनाओं के आधार पर भूल-चूक की गुंजाइश के एक निश्चित दायरे में राय बना पाएं, तो शायद उनका कुछ मूल्य रहे। लेकिन हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि ये राय शिक्षार्थियों के प्रदर्शन के बारे में बनी है और ये शिक्षार्थियों की, एक-दूसरे के संदर्भ में, तुलनात्मक स्थिति पर आधारित है। इनसे हमें किसी एक शिक्षार्थी में मौजूद संभावित क्षमताओं के बारे में कुछ जानकारी नहीं मिलेगी।

इनकी राय भविष्य में एक शिक्षार्थी के प्रदर्शन की बची हुई संभावनाओं के बारे में है और यह अन्य शिक्षार्थियों की तुलना में उस शिक्षार्थी द्वारा अब से पहले किए गए प्रदर्शन पर आधारित होगी। इसे प्रासंगिक कारकों के प्रभाव का हिसाब लगाते हुए संयमित किया जाता है तथा इस प्रक्रिया में भूल-चूक की काफी गुंजाइश रहती है। उत्पादन फलन प्रारूप (Production function models) एक पूर्ण, शुद्ध पैमाना प्रदान करने का प्रयास करते हैं, लेकिन उन्हें प्रतिगमन आधारित प्रारूपों (Regression based models) से ऐसी ही समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि वे बहुत बड़े अनुपात में 'उत्पादों' की व्याख्या नहीं कर पाते- इस बात की बहुत ही सीमित समझ होने के कारण कि 'निवेश' अपनी समग्रता में किन घटकों से बने हैं। तो, कई संदर्भों में हम अब भी यह प्रमाण दे पाने से बहुत दूर हैं कि अन्य के मुकाबले कुछ शिक्षण विधियां उन उद्देश्यों को पाने में बेहतर हैं जिन्हें हासिल करने पर हमारी सहमति हो सकती है। इसे ज्ञानमीमांसीय संशय के लिए एक बहाना न समझा जाए बल्कि यह तो विनम्रता से, स्पष्टता और ईमानदारी से, इस बात को स्वीकरना है कि अभी भी कितना कुछ किया जाना बाकी है। लेकिन हमें ऐसे प्रमाण की जरूरत तो है ही। खास तौर से तब जब कि हम शैक्षिक गुणवत्ता के उस नजरिए के

साथ सहज होना चाहते हों जिसके तहत् शिक्षण तथा सीखने जैसे निवेशों को गंभीरता से लिया जाता है। वह प्रमाण उपलब्ध न हो तो हम निवेश संबंधी कदमों के जरिए शैक्षिक गुणवत्ता को पूरे विश्वास के साथ मूल्यांकित नहीं कर सकते। हम ऐसा कर पाते, तब भी अपेक्षित उद्देश्यों को हासिल कर पाने की सामर्थ्य के संदर्भ में शिक्षण का तरीका प्रभावशाली होने की प्रामाणिकता का आंकलन तो करना ही होगा। हालांकि हम आशा कर सकते हैं कि ये उद्देश्य व्यवस्था में ही जड़े हुए हैं और उस व्यवस्था के 'निवेशों' का ही हिस्सा हैं, लेकिन सामर्थ्य का आंकलन तो किन्हीं उत्पादों से ही संबद्ध होगा- यानी उस शिक्षा से, जो शिक्षार्थियों द्वारा हासिल की गई है। जिस प्रकार केवल उत्पाद पर आश्रित रहने से उन प्रक्रियाओं को जांचने की हमारी सामर्थ्य का रास्ता बंद हो जाता है जो हमें अपेक्षित उत्पादों की ओर ले जाती हैं, इसी प्रकार गुणवत्ता का आंकलन केवल निवेश के कदमों के आधार पर करने का प्रयास सफल नहीं हो सकता। इस बात को दूसरी तरह भी रखा जा सकता है- नतीजे (स्तरों से संबंधित प्रदर्शन) आंतरिक तौर पर उस शिक्षण और शिक्षा से संबद्ध हैं जो उनकी बुनियाद में हैं। हम नतीजों की व्याख्या तब तक नहीं कर सकते जब तक हम उन्हें हासिल किए जाने के लिए प्रयोग में लाई गई शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं और पाठ्यचर्या को नहीं समझ लेते। ध्यान दें, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे केवल आधारभूत पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्रों के संदर्भ में ही प्रासंगिक हैं- बल्कि यह कहा जा रहा है कि उनके महत्त्व और विस्तार को उन्हें अलग-थलग रखकर ठीक से नहीं समझा जा सकता।

सफल शैक्षिक सुधार : स्कॉटलैण्ड में साक्षरता का उदाहरण

सौभाग्य से सफल शैक्षिक सुधार के उदाहरण दे पाना संभव है। ग्लास्गो के पश्चिम में पश्चिमी डन्बर्टनशर नाम की एक छोटी-सी स्थानीय नागरिक इकाई है। यह स्कॉटलैण्ड में अपनी तरह की दूसरी सबसे अधिक वंचित इकाई है और शिक्षा के क्षेत्र में यहां आवश्यकता से बहुत कम उपलब्धि का एक लंबा इतिहास रहा है। बच्चों के साक्षर न हो पाने की भी यहां उच्च दर रही है। दस साल पहले ठान लिया गया कि स्कूलों से निरक्षरता समाप्त कर दी जाएगी और इस समय उद्देश्य की पूर्ति ठीक निशाने पर है। यहां इतना स्थान तो नहीं है कि पश्चिमी डन्बर्टनशर के बारे में विस्तार से चर्चा की जा सके लेकिन यह उदाहरण कई कारणों से शिक्षाप्रद है। पिछले दस वर्षों से इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय साक्षरता रणनीति अपनाई गई है जिसका उद्देश्य मुकाब्लतन कम महत्त्वाकांक्षी रहा है, यानी निरक्षरता को 11 वर्षीय बच्चों के 15% तक घटाना। यह उद्देश्य पूरा हो पाने से अभी हम बहुत दूर हैं। बल्कि वह हमारे भविष्य में दूर ही कहीं खड़ा दिखता है। 5 करोड़ के देश में राष्ट्रीय स्तर की पहलकदमी की सीधी तुलना एक छोटी-सी नागरिक इकाई की पहलकदमी के साथ करना खतरनाक तो है, लेकिन यह उदाहरण इसलिए शिक्षाप्रद है क्योंकि यह उन समस्याओं की ओर हमारा ध्यान ले जाता है जो राजनैतिक स्तर पर आम राय, सावधानी से किए गए गहन शोध, या एक प्रतिबद्ध और जानकार शिक्षक बल का आधार न होने पर, 'आदेश और नियंत्रण' के दृष्टिकोणों की वजह से सामने आ सकती हैं। पश्चिमी डन्बर्टनशर को हम ध्यान से देखें तो यह जान पाना संभव है कि उसे समझने के लिए 'निवेश-उत्पाद' की चर्चा मददगार नहीं है, लेकिन उद्देश्य, स्तर, प्रदर्शन, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र तथा मूल्यांकन जैसी परम्परागत श्रेणियां इसमें हमारी मदद करती हैं।

1. स्थानीय नागरिक इकाई ने राजनैतिक स्तर पर चर्चा के बाद स्वयं के लिए एक उद्देश्य तय किया और उस उद्देश्य को शिक्षक समुदाय के साथ आम राय के आधार पर अपना लिया। उद्देश्य स्पष्ट है और सब उसे समझते भी हैं- आने वाले दस सालों के दौरान स्कूलों में निरक्षरता को मिटाया जाना है। शिक्षकों समेत सभी अपने आपको इस उद्देश्य के साथ बहुत करीब से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं।

2. उद्देश्य की बुनियाद में सामाजिक न्याय का विचार था- यह विचार कि असमानता एक सामाजिक बीमारी है और इसे बनाए रखने में निरक्षरता एक महत्त्वपूर्ण कारक है। कम से कम युनाइटेड किंग्डम में तो ऐसे उद्देश्य के गिर्द सामाजिक सर्व-सम्मति बना पाना संभव है क्योंकि बावजूद इसके कि इसके प्रभाव क्रांतिकारी किस्म के हैं, रूढ़ीवादी तथा समाजवादी, दोनों ही इस सोच की ओर प्रवृत्त हैं कि निरक्षरता एक बुरी चीज है।

3. उद्देश्य की बुनियाद में शिक्षार्थियों की ऊंची आशाएं थीं। विज्ञान का नकाब पहने हुए कुछ विचारधाराएं इस विचार को बढ़ावा देती हैं कि कुछ बच्चे तो ऐसे हैं जिन्हें शिक्षित करना संभव ही नहीं है- ऐसी विचारधाराओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

4. उद्देश्य को हासिल कर पाने में सफलता को स्पष्ट मापदण्डों के मुताबिक आंका जाएगा और इन मापदंडों के संदर्भ में प्रदर्शन को मापा जा सकेगा।

5. उद्देश्य की बुनियाद में उपलब्ध उत्तम शोध एवं अनुसंधान था। काफी समय मुद्दे का शोध करने में लगाया गया। शैक्षणिक पद्धति का कार्यक्रम भी ऐसे प्रयोग और व्यवहार पर आधारित था जिसके बारे में बेहतरीन अनुसंधान के बल पर कहा जा सकता था कि उसमें सफलता मिलेगी। हां, इस प्रयोग को इस ढंग से लाया गया कि उसके उदाहरणों से सभी शिक्षक उसके प्रभावकारी होने की बात से आश्वस्त हो गए।

6. शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार और कार्य उद्देश्यों से तो संबद्ध था ही, उन उद्देश्यों तक पहुंचने के सबसे बेहतर तरीकों पर उपलब्ध शोधकार्य से भी संबद्ध था। इतना ही काफी नहीं है कि शिक्षक शैक्षिक उद्देश्यों के साथ नजदीकी जुड़ाव महसूस करें। उनके पास वे साधन भी होने जरूरी हैं जिनके माध्यम से वे उन उद्देश्यों को हासिल कर पाएं। इसका अर्थ है कि उन्हें सिद्धांत तथा व्यवहार में जो भी करने को कहा जा रहा है, वे उसके औचित्य को भी समझें। इस सबके अलावा, जहां उनके कौशल में कमी है, उदाहरण के लिए, समस्या का पता लगाने और मूल्यांकन में, वहां आवश्यक होगा कि अपना कार्य कर पाने के लिए उनके पास बौद्धिक औजार भी हों। विस्तृत स्तर पर इसका अर्थ है कि शिक्षक-शिक्षा में भी सुधार की जरूरत हो सकती है।

7. स्थिति की असलियत को ध्यान में रखकर समय सीमाएं तय की गईं। एक छोटी-सी नागरिक इकाई में भी यह मानकर चला गया कि इस प्रकार के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दस साल के लगातार प्रयासों की जरूरत पड़ेगी। यह उस समय सीमा से लंबी अवधि है जिसके दायरे में आमतौर पर राजनीतिज्ञ सक्रिय रहते हैं। इसलिए इस प्रकार की पहलकदमियों के लिए राजनैतिक स्तर पर भी आम राय या सर्व-सहमति का कुछ न कुछ आधार होना चाहिए। इससे एक बार फिर पता चलता है कि शैक्षिक उद्देश्यों के स्थापित होने में राजनैतिक संदर्भ की कितनी अधिक अहमियत है और यह एहसास भी होता है कि ऐसे उद्देश्यों को लागू किए जाने में एक मजबूत राजनैतिक आधार की कितनी जरूरत है।

सवाल उठता है कि मेरी समझ के मुताबिक एक लोकतांत्रिक और काफी हद तक समतावादी समाज में ज्ञान, कौशल और स्वतंत्रता की महत्त्वपूर्ण भूमिका लिए हुए कार्य पर टिकी शैक्षिक गुणवत्ता के मुख्य तत्व क्या हैं ?

- मैं इसी से अपनी बात की समाप्ति करूंगा। मैं आशा करता हूं, ऐसा नहीं लगेगा कि इन तत्त्वों को हवा में से उठा लिया गया है बल्कि ये इस शोध-पत्र में शैक्षिक गुणवत्ता के बारे में की गई चर्चा को ही प्रतिबिम्बित करेंगे।
- स्पष्ट उद्देश्य जो वयस्क के रूप में हमारी मानवीयता के उन विभिन्न पहलुओं को आधार देते हो जिन्हें हम विकसित करना चाहते हैं, और जो उच्च आकांक्षाओं को पूज्यनीय स्थान प्रदान करते हों। उन्हें माता-पिता तथा जन समुदाय द्वारा स्वीकारा जाए और समझा भी जाए।
- जिन स्तरों तक पहुंचने की जरूरत है, उन पर एक निर्णायक राय बन जाना और फिर उनकी रक्षा के लिए तैयार रहना। स्तर उद्देश्यों को अधिक विस्तार के साथ अभिव्यक्त करें और पाठ्यचर्या के अंतर्गत विकास और प्रगति के विभिन्न चरणों को आधार प्रदान करें।
- मूल्यांकन, जो शिक्षण की निरंतर चलने वाली गतिविधि का हिस्सा हो और जो वास्तव में उसे अनुप्राणित करे। बच्चों के कार्य का आंकलन करते समय शिक्षकों में समस्याओं को चिह्नित करने के बेहतर कौशल होने चाहिएं- भविष्य के कार्य और व्यवहार को अनुप्राणित करने के लिए इनकी जरूरत रहती है।
- सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की पक्की जरूरत के तौर पर सार्वभौमिक साक्षरता तथा बुनियादी अंक-ज्ञान। इसके बिना किसी भी तरह की निरंतर प्रगति कर पाना मुश्किल है। इंग्लैंड की व्यवस्था में 20% बच्चे 11 वर्ष के होने पर भी इन कौशलों को हासिल नहीं कर पाते। वे किसी प्रकार की सार्थक प्रगति नहीं कर पाते और द्रोही तथा उदासीन हो जाते हैं। हमें यह समझना होगा कि इतने बड़े पैमाने पर असफलता के कारण क्या हैं और उससे निपटने का तरीका क्या है।
- व्यवस्था के भीतर ही वर्तमान में हासिल की जा रही प्रदर्शन संबंधी उपलब्धि के बारे में सरकारी एजेन्सियों को सटीक सूचना देने का कोई ढंग होना चाहिए। सांदर्भिक मूल्यवर्धन के लिए उठाए जाने वाले कदमों के साथ समस्या यह है कि वे परिमाणात्मक/मात्रात्मक अर्थ में व्यक्तिगत प्रदर्शनों के बारे में कुछ बताने का तो एक लम्बा-चौड़ा, जटिल तरीका है लेकिन वे हमें इस बारे में कोई समझ प्रदान नहीं करते कि एक निश्चित आयु के बच्चों से एक निश्चित स्थिति में किस प्रकार के प्रदर्शन की उम्मीद की जा सकती है। और इस प्रकार वे तुलना, चर्चा तथा शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार में बदलाव के लिए कोई आधार प्रदान नहीं करते। इसके लिए बच्चों द्वारा किए गए कार्य की- मौखिक कार्य की भी- हल्की-सी, अप्रत्यक्ष बानगी लेने का काम होना चाहिए, जैसा कि प्रदर्शन-मूल्यांकन इकाई (Assessment of Performance Unit) द्वारा किया गया था।
- सावधानी से चुना गया शिक्षक-बल जो स्तरों और उद्देश्यों के साथ स्वयं को निकटता से जुड़ा हुआ महसूस करे और उन्हें बनाए रख सकता हो और जिसमें शैक्षणिक दावों का मूल्यांकन कर पाने की तथा मूल्यांकन को शिक्षण में सम्मिलित कर पाने की क्षमता हो।

दो और तत्व हैं जिनकी ओर ध्यान जाना चाहिए और जो अब तक की हमारी चर्चा का हिस्सा नहीं रहे। मैं उनका जिक्र इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मैं यह विचार या भाव नहीं छोड़ना चाहता कि सभी प्रकार के शैक्षिक सुधार समाज के संदर्भ के साथ जुड़े बिना किया जा सकते हैं। मैं विशेष तौर पर यह दलील देना चाहता हूं कि आर्थिक वातावरण द्वारा, खास तौर से नौजवानों के श्रम-बाजार द्वारा, शिक्षा के संदर्भ में नौजवानों की आशाओं के बनने में निर्णायक कारकों की भूमिका निभाई जाती है। हां, यह जरूर है कि मैं जिन कारणों से यह कह रहा हूं, वे इस शोध-पत्र के दायरे से बाहर हैं। दो तत्व जिनकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए-

- नौकरी देने वाले लोग व्यवस्था के उद्देश्यों के साथ निकट का जुड़ाव रखने और शिक्षा व्यवस्था के साथ मिलकर उन्हें हासिल करने के लिए गहरे तौर पर वचनबद्ध हों। इसका अर्थ यह हो सकता है कि उनकी तथा नौजवानों के श्रम-बाजार की, गतिविधियों को नियंत्रित किया जाए। साथ ही, श्रम-बाजार में नौजवानों के प्रवेश के लिए आवश्यक शैक्षणिक तथा प्रशिक्षण संबंधी जरूरतों को भी नियंत्रित करना पड़ सकता है।
- श्रम-बाजार में प्रवेश करने के बारे में सोचने के समय शिक्षार्थियों तथा विद्यार्थियों के पास चुनाव और अपनी मर्जी का निर्णय लेने का प्रावधान रहे। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण चुनाव इस प्रावधान के तहत होगा कि वे कार्य-आधारित रास्ते को चुन सकें, खास तौर से किसी भी शक्ल में प्रशिक्षण लेने का रास्ता।

टिप्पणियां :

1. आम तौर पर माना जाता है कि ये नव-परिवर्तन पारदर्शिता और लचीलापन, दोनों को बढ़ावा देते हैं- और दोनों ही एक सर्वसामान्य यूरोपीय श्रम-बाजार के अहम अंग हैं। एक बाजार के कार्य करते रहने के लिए कुछ जानकारियों का होना आवश्यक है। नौकरी देने वाला एक संभावित व्यक्ति क्या कुछ कर सकता है, इससे संबंधित जानकारी में पारदर्शिता भी बाजार के लिए आवश्यक है। श्रम और शिक्षा, दोनों के बाजारों के भीतर गतिशीलता को बढ़ावा देने के लिए लचीलेपन का होना जरूरी है। इसलिए ऐसा माना जाता है कि ये नव-परिवर्तन अकादमिक तथा व्यावसायिक, दोनों प्रकार की शिक्षा पर लागू होंगे। इन मुद्दों पर अधिक जानकारी हासिल करने के लिए लेखक की वेबसाइट पर से उसे डाउनलोड किया जा सकता है- http://www-kcl-ac-uk/schools/sspp/education/research/projects/eurvoc-html
2. इंग्लैंड में प्रयोग की जा रही कार्यप्रणाली का एक अच्छा आधिकारिक परिचय हासिल करने के लिए देखें- http://nationalstrategies-standards-dcsf-gov-uk/node/188771
3. इस अर्थ में सीखने के परिणाम के विचार में एक निहित विरोधाभास है। एक ओर तो वह सीखने की प्रक्रिया को ध्यान में रखे बिना एक उत्पाद या परिणाम को निश्चित-निर्धारित करता है; दूसरी ओर वह सीखने के परिणामों को ज्ञान, कौशल तथा समझ की एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था में रखते हुए, यह मानकर चलता है कि सीखना लगातार अग्रसर, बढ़ते चले जाने वाली संचयी प्रक्रिया है जिसमें ज्ञान लगातार इकट्ठा होता चला जा रहा है। इसीलिए उपरोक्त उदाहरण में चिह्नित मुश्किल आती है।
4. वेबर और बट्लर (2007) का कार्य और भी अधिक जटिलता की ओर इशारा करता है, जिसमें अंतर्निहित है कि युनाइटेड किंग्डम में 61 विभिन्न सामाजिक समूह हैं जिन्हें ऐसे विश्लेषणों में ध्यान में लेने की जरूरत है। इसमें ही यह भी निहित है कि विद्यालय में लिए जा रहे शिक्षार्थियों की सामाजिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण में उस स्तर की बारीकी चाहिए जो सरकार के सांदर्भिक मूल्य-वर्धित गणित में उपलब्ध नहीं है।
5. KS 'Key Stage' (मुख्य चरण) के लिए प्रयुक्त किया गया है। इंग्लैंड में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को चार मुख्य चरणों में विभाजित किया गया है : KS1, 5-7 आयु वर्ग; KS2, 7-11आयु वर्ग; KS3, 11-14 आयु वर्ग; KS4, 14-16 आयु वर्ग।

भाषान्तर : रमणीक मोहन